मानवीय मन के बारे में निश्चित तौर पर कुछ भी कहना नामुमकिन है। बच्चों के सीखने-समझने के संदर्भ में भी कहा जा सकता है कि उसकी सीखने की स्थितियों को निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह कथन बच्चों के साथ काम करने के असीम क्षेत्रों की ओर संकेत करता है और इससे शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों के साथ काम करने की असीम संभावनाएं खुल जाती हैं। बच्चों के साथ सोचने का काम बहुत से लोग करते रहे हैं। उन्होंने इस प्रचलित धारणा को चुनौती दी है कि बच्चों के साथ दार्शनिक चिंतन संभव नहीं है। प्रस्तुत लेख 'बच्चों के लिए दर्शन' बच्चों के साथ संवाद से आलोचनात्मक चिंतन, स्वायत्तता, खोज एवं प्रयोग द्वारा ज्ञान निर्माण की पैरवी करता है। साथ ही लेखिका ने बच्चों के लिए दर्शन की मशीनी प्रकृति से मौलिकता के खोने का संशय भी प्रकट किया है।

बच्चों के लिए दर्शन विचार के एक झोंके की तरह

❑ नैन्सी वेंसिलिघम

'विचार की हर उठती बयार ज्ञान नहीं होती। ज्ञान तो सही गलत में फर्क करने की क्षमता का नाम है।' - हान्ना आरेंट (1978)

शिक्षा के एक संगठित कार्यक्रम के रूप में पहले-पहल बच्चों के लिए दर्शन 1970 में स्थापित किया गया, लेकिन बीते दशक में इस पर चर्चाओं में नया मोड़ आया है। बच्चों के लिए दर्शन के मूल विचार को लेकर अब भले ही कोई सवाल न हो, लेकिन विभिन्न संदर्भों में इसे अभ्यास में कैसे लाया जाए, इस पर बहस अब भी बाकी है। 1970 के दशक में बच्चों के लिए दर्शन ने अपने-आप को मोटे तौर पर शिक्षा में प्रगतिशीलता के व्यापक सिद्धांत, खासतौर से बच्चों के उद्धार के प्रति इसकी प्रतिबद्धता से, संबद्ध कर लिया था, हाल के सालों में इसका ध्यान कार्यक्रम में सुधार और पाठ्यक्रम में इसे कैसे शामिल किया जाये जैसे ज्यादा व्यावहारिक सवालों की ओर गया है। बच्चों के लिए दर्शन का लक्ष्य शिक्षा में आमूल परिवर्तन है - यह एक ऐसा नजरिया है जिसमें अध्यापक की भूमिका पर जोर दिया गया है और जो एक ऐसी समझ के साथ ज्ञान के हस्तांतरण की बात करता है जो बच्चे को केन्द्र में रखकर खोज और प्रयोग के द्वारा सीखने और ज्ञान के निर्माण पर जोर देता है। ताकि बच्चे और वयस्क के बीच श्रेणीबद्ध संबंध न रहें और बच्चा स्कूली तंत्र द्वारा निर्धारित भूमिकाओं से मुक्त हो सके। लोकतंत्र के लिए इसकी प्रासंगिकता को लेकर महत्वाकांक्षी दावे किए गए, जैसे कि बच्चों के लिए दर्शन का प्रयोजन खासतौर से बच्चों को स्वायत्त, आलोचनात्मक और विवेकपूर्ण ढंग से चिंतन करने में मदद करना है, जिसमें सभी घटकों, खासतौर से बच्चों, की जरूरतों और हितों का ध्यान रखा गया है (देखें : लिपमॉन, शार्प एंड ऑस्केनयन-1980, स्पिलर एंड शार्प-1995)। इन लक्ष्यों को पाने के लिए 'खोजी समुदाय' के प्रयोग को पेश किया गया, एक ऐसा प्रस्ताव जिसमें ऐसे वातावरण का निर्माण शामिल है जहां आलोचनात्मक चिंतन और संवाद का अभ्यास किया जा सके। परिणामस्वरूप बच्चों के लिए दर्शन को ज्ञान के अधिकार क्षेत्र के रूप में नहीं बल्कि ऐसे पैकेज के रूप में देखा जाना चाहिए जिसमें गतिविधियों और तकनीकों को इस तरह डिजाइन किया गया है कि वह ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो और उसमें हिस्सा लेने वाले स्वायत्त निर्णय लेने में सक्षम हो सकें। इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए ऐसे क्षेत्रीय केंद्र स्थापित किए गए, जहां सामग्री विकसित की जा सके और शिक्षकों को अपनी शैक्षणिक गतिविधियों में बच्चों के लिए दर्शन को शामिल करने के लिए अनिवार्य उपकरण और विशेषज्ञ सहायता उपलब्ध कराई जा सके (उदाहरण के लिए देखें : द इंस्टीट्यूट फॉर द एडवांसमेंट ऑफ फिलॉसफी फॉर चिल्ड्रन, एसीइआर, 100 फिलोकेट एंड इनीशिया (आईएनआईटीआईए))।

बच्चों के लिए दर्शन का यह सामान्य मकसद है कि उसमें इस आधार पर समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति की आवाज को शामिल किया जाए कि जितनी ज्यादा आवाजों को सुना जाएगा उतना ही एक उपयुक्त प्रतिनिधि आम सहमति पर पहुंचने की संभावना खुलेगी। इस लिहाज से बच्चों की बातों का खास महत्त्व है क्योंकि वे लगातार सवाल करते हैं जबकि वयस्क अपनी इस क्षमता को खो चुके होते हैं। उपकरणों और दक्षताओं के इस्तेमाल की क्षमता, रणनीति को अपनाना और बहस में भाग लेना तथा सवाल पूछना लोकतांत्रिक समाज की मूलभूत पूर्वधारणाएं हैं। इसी तरह बच्चों के लिए दर्शन इस प्रस्ताव पर आधारित है कि बच्चों को खास किस्म की नियति से मुक्त रखने और उन्हें लोकतांत्रिक, स्वतंत्र नागरिकों में रूपांतरित करने के लिए आलोचनात्मक चिंतन और संवाद अनिवार्य शर्तें हैं।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य लोकतंत्र के लिए शिक्षा के अर्थ और विचार, जैसा कि इसे बच्चों के लिए दर्शन के द्वारा समझा जाता रहा है, का विश्लेषण करना है। हालांकि कोई भी बच्चों के लिए दर्शन में आलोचनात्मक चिंतन, स्वायत्ता और संवाद पर दिए गए महत्त्व का समर्थन करना चाहेगा, लेकिन इसके बावजूद इस पर संदेह के भी कारण मौजूद हैं। चूंकि हमसे यह अपेक्षा स्वाभाविक है कि हम बच्चों के लिए दर्शन के मूल विचार को समझें, ऐसा प्रतीत होता है कि हम बिना कोई असहमति जताए इस पूरे पैकेज से ही बंध जाते हैं। नतीजा यह कि हम इस समग्र विचार पर सवाल उठाने की सामर्थ्य खो बैठते हैं। अंतत: सिर्फ यही स्वाभाविक लगता है कि हम अपने समकालीन अति मुखर समाज में ऐसे प्रत्येक विचार का समर्थन करें जो आलोचनात्मक चिंतन, संवाद, स्वायत्तता और सहभागिता की बात करता हो। मुझे आशंका है कि बच्चों के लिए दर्शन के विचार के प्रति मौजूदा आम सहमति के चलते शिक्षा और लोकतंत्र के बारे में विचार के अन्य तरीके वर्जित ही न रह जाएं। मुझे संदेह है कि बच्चों के लिए दर्शन से सोचने और संवाद की गतिविधियों को जिस रूप में धारण किया गया है वह महज इसलिए लोकतंत्र और स्वतंत्रता का आधार नहीं हो सकते क्योंकि एक खास किस्म के चिंतन ने इसे पहले से तय कर दिया है और हम स्वायत्तता, आलोचनाशीलता, रचनात्मकता और मुखर नागरिक होने के नाम पर, उन्हीं भूमिकाओं को निभाते रहें जिनकी हमसे अपेक्षा की जा रही है और अन्य संभाावनाओं पर बात ही न हो पाए। इन्हीं विचारों के बल पर मेरा मानना है कि बच्चों के लिए दर्शन का अपना एक एजेंडा है और वह उसी एजेंडा को पूरा करने के लिए एक वाहक के रूप में काम करता है।

बच्चों के लिए दर्शन का लक्ष्य शिक्षा में आमूल परिवर्तन है – यह एक ऐसा नजरिया है जिसमें अध्यापक की भूमिका पर जोर दिया गया है और जो एक ऐसी समझ के साथ ज्ञान के हस्तांतरण की बात करता है जो बच्चे को केन्द्र में रखकर खोज और प्रयोग के द्वारा सीखने और ज्ञान के निर्माण पर जोर देता है। ताकि बच्चे और वयस्क के बीच श्रेणीबद्ध संबंध न रहें और बच्चा स्कूली तंत्र द्वारा निर्धारित भूमिकाओं से मुक्त हो सके।

आरंभिक बिंदु के रूप में मैं इस बात को रेखांकित करना चाहूंगी कि मैं बच्चों के लिए दर्शन के मुख्य विचार से क्या समझती हूं और यह बताने का प्रयास करूंगी कि यह आलोचनात्मक चिंतन, संवाद और लोकतंत्र की अवधारणाओं की व्याख्या कैसे करता है। साथ ही साथ मैं बच्चों के लिए दर्शन की बढ़ती हुई मशीनी प्रकृति और इस मशीनीकरण के कारण मौलिकता को होने वाली क्षति की ओर भी ध्यान आकर्षित कराना चाहूंगी। इस मशीनीकरण की आलोचना को हान्ना आरेंट की 'जन्म और चिंतन' (नेटेलिटी एण्ड थिंकिंग) की अवधारणा के संदर्भ में समझा जा सकता है। आरेंट के अनुसार स्वतंत्रता जन्म (नेटेलिटी) में है, जबकि नए व्यक्ति, वस्तु या विचार के प्रति प्रतिक्रिया करने की जिम्मेदारी का बोध ही चिंतन है। इस तरह के चिंतन को परंपरागत तरीकों से अर्जित नहीं किया जा सकता, यह चिंतनपरक समस्या समाधान की क्षमता, दक्षता या रणनीति नहीं है बल्कि यह अर्थ की खोज है। इसका मतलब यह नहीं कि मैं चिंतन की दक्षता या रणनीति को खारिज करना चाहती हूं या शिक्षा में इनके महत्त्व को नकारना चाहती हूं। मैं तो सिर्फ इस बात का पता लगाना चाहती हूं कि अन्य रूपों में सोचना संभव भी है या नहीं । दूसरे शब्दों में कहा जाए तो क्या बच्चों के लिए दर्शन अन्य संभावनाएं भी खोलता है या नहीं । इस पत्र के अंतिम हिस्से में इसी सरोकार की चर्चा की गई है।

1. बच्चों के लिए दर्शन और लोकतंत्र के लिए शिक्षा

मैथ्यू लिपमॉन के अनुसार बच्चों के लिए दर्शन को एक ऐसे मॉडल के रूप में पढ़ा जाना चाहिए जो स्वयं को संचालित करने की रणनीतियां और चिंतन की दक्षता प्रदान करता है। दर्शन व्यक्ति को खुद पर और दूसरों पर सवाल उठाने के लिए अनेक उपकरण प्रदान करा कर स्वायत्त चिंतन की संभावना उपलब्ध कराता है। कोई व्यक्ति जो स्वयं चिंतन करने में सक्षम है वह अपनी गहनतम भावनाओं, मूल्यों और पहचान को भी प्रश्नित कर सकता है (लिपमॉन, 2003)।

इस लक्ष्य को पाने के लिए बच्चों के लिए दर्शन की परिकल्पना इस रूप में की गई है कि वह बच्चों के हितों और जरूरतों के अनुकूल बन सके और इसे ऐसी कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिनका रोजमर्रा के जीवन अनुभवों के साथ अर्थगत, तर्कसंगत, सौंदर्यगत और नैतिक संबंध खोजा जा सकता हो। एक तरफ कहानियों पर चर्चा, यानि खोजी समुदाय का उद्देश्य बच्चों में नैतिक और राजनीतिक सामयिक अवधाारणाओं, जैसे कि सम्मान, उदारता, समझौते की बातचीत, निर्णय, समानता और न्याय के अर्थ पर चिंतन को प्रोत्साहित करना है। दूसरी तरफ खोजी समुदाय बच्चों को इन अवधारणाओं को अभ्यास में लाने के अवसर भी उपलब्ध कराता है - जैसे कि विचारशील चिंतन, अपने समकक्षों का सम्मान करना, उनके साथ सहयोग करना, समझौते करना, अपनी गलतियों को सुधारना, सही निर्णय लेना आदि। इस प्रणाली

में अनेक तथाकथित दक्षताओं के विकास की संभावना भी निहित है, जैसे सही कारण बताना, विभेद और संबंध को बेहतर ढंग से बता पाना, सही अनुमान कर पाना, परिकल्पना करना, अच्छे प्रश्न उठाना, कसौटी को पहचानना और इस्तेमाल करना, प्रासंगिकता की मांग करना, स्पष्टीकरण की मांग करना, विकल्प बताना, दूसरों के योगदान पर तर्कसंगत बात करना, प्रति उदाहरण पेश करना, कारण जानना चाहना, पता लगाना आदि (देखें : लिपमॉन, शार्प एंड ऑस्केनयन-1980, शार्प-1993)। इस संदर्भ में दर्शन पढ़ाने में यह निहित है कि (1) बच्चों में उन दक्षताओं, रणनीतियों और आचरणों के विकास में मदद की जाए जिनकी उन्हें जरूरत है और उन्हें अभ्यास में लाने में समर्थ बनाया जाए और (2) बच्चे जो सोचते हैं उसका बहुत निकटता के साथ अनुसरण कर उन्हें अपने विचारों को व्यक्त करने में मदद की जाए और उन्हें सही समय पर सही सवाल पूछ कर अपने विचारों को वस्तुपरक ढंग से देखने में मदद की जाये। संक्षेप में कहा जा सकता है कि लिपमॉन का कार्यक्रम उन उद्देश्यों की ओर अभिमुख है जो बौद्धिक विकास, तार्किक चिंतन और दूसरों के समानुभूति की ओर उन्मुख होने के साथ ही साथ सहभागितापूर्ण, स्वायत्त, जवाबदेह और श्रद्धावान नागरिकों को तैयार करने में सहायक उद्देश्यों की ओर भी प्रवृत्त है (डेनियल, शेलिफर एंड लीबोयस, 1992)। लिपमॉन कहते हैं कि बच्चों के लिए दर्शन उच्च स्तरीय चिंतन के एक प्रकार के रूप में लोकतांत्रिक और स्वतंत्र जीवन की ओर पहला कदम है (देखें: लिपमॉन, शार्प एंड ऑस्केनयन-1980)। डीवी की ही तरह लिपमॉन भी लोकतंत्र को शासन के एक रूप में नहीं बल्कि स्वयं को शासित करने और साथ-साथ जीने के एक तरीके के रूप में देखते हैं। स्वयं को शासित करने से यहां आशय एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें व्यक्ति का अपने चिंतन, अपने क्रिया-कलापों और अपने आस-पास के वातावरण पर ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण हो। डीवी के अनुसार यह नियंत्रण हासिल करने के लिए कर्म महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि केवल कर्म करके ही हम उन परिणामों को हासिल कर सकते हैं, जिनकी ओर हमारे क्रियाकलाप निर्देशित हों। अंतत: कर्म के परिणामों को उसके असर के संदर्भ में ही तोला जाता है। इसी संदर्भ में लिपमॉन स्वयं को सुधारने के अभ्यास की बात करते हैं कि जितने ज्यादा सवाल, जितनी ज्यादा परिकल्पना की जाएगी उतनी ही विश्वसनीय कसौटी तय होगी। लॉरेंस स्पिलटर और एन्न शार्प के अनुसार,

'स्वयं के लिए चिंतन में ज्यादा से ज्यादा विश्वसनीय कसौटी की खोज निहित है ताकि व्यक्ति को अपने निर्णयों के लिए ज्यादा मजबूत और दृढ़ आधार मिल सके। जो स्वयं चिंतन करते हैं वे किसी खास विचार के पक्ष में तर्क गढ़ने और नतीजों पर पहुंचने में सक्षम होते हैं। लेकिन वे नए विचारों और संभावनाओं के लिए भी तैयार रहते हैं।' (देखें : स्पिलटर एंड शार्प, 1995, पृ. 16)

इसका कदापि यह मतलब नहीं है कि बच्चों के लिए दर्शन व्यक्ति के पूर्णत: स्वायत्त ढंग से कार्य करने की कल्पना करता हो। अच्छी तरह सोचे-समझे और संतुलित जवाब की खोज के लिए अन्यों के साथ संवाद तो अपरिहार्य है, क्योंकि समुदाय में जितनी ज्यादा वैकल्पिक आवाजों को शामिल किया जाएगा, उतने ही ज्यादा, विश्वसनीय निष्कर्षों और निर्णयों पर पहुंचा जा सकेगा।

बच्चों के लिए दर्शन स्वयं भी ऐसी रणनीतियां और कार्यप्रणालियां बताता है, जिनके द्वारा हम स्वयं को और अपने अनुभवों को दूसरों के साथ संबद्ध कर सकें। आखिरकार स्वायत्तता को भी ऐसी सक्षमताएं और दक्षताएं चाहिए, जो एक परिवर्तनशील समाज के लिए उपयोगी हों। इनमें खासतौर से वे दक्षताएं और सक्षमताएं शामिल हैं जो ज्ञान और मूल्यों के निर्माण, विश्लेषण तथा उनका दूसरों के साथ साझा कराने के अवसर उपलब्ध कराती हो। गणितीय विशेषज्ञता और अनौपचारिक तर्क की दिलचस्पी उन संप्रेषण के प्रतिमानों और प्रासंगिक घटकों की रोशनी में है जो बच्चों के सीखने को पोषित करें। इस लिहाज से अध्यापक और छात्र अपने जानने और चिंतन करने के रास्तों के सक्रिय निर्माता हैं। जानने को गणितीय अभ्यासों में शामिल की क्षमता के रूप में देखा गया है, जिन्हें करते हुए व्यक्ति अपने अनुभवों को सही-सही दूसरों को समझा सकता है। खोजी समुदाय ज्ञान और मूल्यों के बारे में समानता और आम सहमति पर आधारित साझा प्रतिमानों के विकास पर ध्यान देने की बात कहता है। खोज की इस प्रक्रिया में दूसरों का योगदान आधाारभूत है क्योंकि जितने ज्यादा वैकल्पिक दृष्टिकोण सामने होंगे, आम सहमति पर पहुंचने की संभावना भी उतनी ही ज्यादा होगी। इस लिहाज से बच्चे का योगदान अतंत: महत्त्वपूर्ण है, खासतौर से इसलिए भी क्योंकि उसकी दृष्टि समाज से (बहुत ज्यादा) प्रभावित नहीं हुई है और इसलिए वह ज्यादा रचनात्मक और आलोचनात्मक भी है (मैथ्यूज, 1984)। चिंतन की इन दक्षताओं को हासिल कर लेने के साथ ही एक परस्पर बहस और उससे भी आगे जाकर परस्पर सहमति संभव हो पाती है। रचनात्मक और आलोचनात्मक चिंतन की दक्षता से भी आगे बढ़कर जिस चीज का जिक्र किया जाना चाहिए वह है प्रश्न उठाने की ओर झुकाव और उसकी इच्छाशक्ति। लिपमॉन के अनुसार यही बच्चे की मूल प्रकृति है (लिपमॉन, शार्प एंड ऑस्केनयन, 1980)।

लोकतंत्र के लिए यह तर्क बच्चों के लिए दर्शन को पढ़ाने के मकसद को परिभाषित करता है। बच्चों के लिए दर्शन पर

आयोजित आठवें सम्मेलन में क्रिस्टीन गेहरेट ने कहा था कि-

'परिवर्तन के दूतों के रूप में ऐसे बच्चे जो अपने तरीकों से स्वयं चिंतन करने में सक्षम हैं, वे अपने विवेक से अपनी संस्कृति और उससे आडे-तिरछे रास्तों पर चल कर खुद अपनी मंजिल को पाने की क्षमता रखते हैं। वे किन्हीं दो रास्तों में से एक को चुनने के महत्त्व को समझ सकते हैं। और इसलिए वे स्वयं संस्कृति के अंदर से उसकी नियति पर कुछ नियंत्रण प्रदर्शित कर सकते हैं। जब उनका सामना साम्राज्यवाद या शोषण या प्रताड़ना से होता है तो ऐसे बच्चे जिन्होंने आलोचनात्मक ढंग से मूल्यांकन करना सीखा है वे अपने क्रियाकलापों के परिणामों को समझेंगे और इसलिए वे अपनी संस्कृति का अंत: सांस्कृतिक और अंतर सांस्कृतिक, दोनों ही तरह के संवादों के माध्यम से संरक्षण करने में बेहतर सक्षम होंगे। समाज का रूपांतरण वयस्क के रूप में इन्हीं बच्चों के माध्यम से संभव होगा, जिनके लिए सभी संभावनाओं के दरवाजे खुले हैं और जो अपने संकल्पों को बेहतर ढंग से व्यक्त कर सकते हैं ।' (गेहरेट, 1997, पृ. 50-51)

इस तरह हम कह सकते हैं कि खोजी समुदाय का बच्चों के चिंतन को सुधारने के साथ ही साथ उनके पूरे व्यवहार पर भी गहरा असर होता है। मैरी फ्रांस डेनियल खोजी समुदाय को जीवन के लिए शिक्षा के रूप में देखते हुए इसे 'नीतिपरक और राजनीतिक जीवन की शिक्षा' कहती हैं (डेनियल, शेलिफर एंड लिबॉयस-1992, पृ. 33)। इसी तरह, जैसा कि शार्प भी कहते हैं-

'खोजी समुदाय लोकतंत्र को प्रतिबिम्बित करता है और बच्चों को इसी प्रतिमान के अनुरूप सिद्धांतों और मूल्यों की शिक्षा देना शुरू करता है, जो नई पीढ़ी को व्यक्तिगत और राजनीतिक विकास की प्रक्रिया की ओर ले जाती है ..... स्कूल में विचार और कर्म की स्वतंत्रता को अभ्यास में लाने से लोकतंत्र उनके जीवन और स्वभाव में इस तरह शामिल हो जाएगा कि अपने समाज के सक्रिय वयस्क के रूप में भी वह उनमें परिलक्षित होगा।' (शार्प-1997, पृष्ठ 12)।

स्वयं लिपमॉन भी कहते हैं, 'ऐसी शिक्षा जो बच्चों में दार्शनिक शोध को प्रोत्साहित करती हो वह निश्चय ही सही अर्थों में लोकतांत्रिक वयस्क समाज का निर्माण करती है। (डेनियल, शेलिफर एंड लिबॉयस-1992, पृ. 5 पर लिपमॉन)। डेनियल इससे आगे कहते हैं-

'खोजी समुदाय नई पीढ़ी को इस दुनिया में अपना स्थानग्रहण करने में मदद करता है, यह अच्छी आदतों को पोषित करता है और चारित्रिक रूप से व्यक्ति को समृद्ध बनाता है, यह व्यक्तिगत और सार्वजनिक हित के बीच सामंजस्य स्थापित करता है, स्वयं की एक प्रतिमान के रूप में सेवा करते हुए यह स्वयं भी एक प्रतिमान कायम करता चलता है, संक्षेप में खोजी समुदाय बच्चे के सकारात्मक सामाजीकरण का प्रतिनिधित्व करता है।' (डेनियल, शैलिफर एंड लिबॉयस-1992, पृ. 5)।

व्यक्तिगत चिंतन, आलोचनात्मक चिंतन और अन्यों के साथ सवाल-जवाब की आदतें बच्चों के लिए दर्शन के अभिमुखीकरण की प्रमुख विशेषताएं हैं और उनका उसी तरह से लोकतंत्र के साथ संबंध स्थापित करना अनिवार्य है, जैसा कि लिपमॉन और आलोचनात्मक चिंतन आंदोलन विश्लेषित करते हैं। लिपमॉन इस बात से पूरी तरह सहमत हैं कि स्वायत्त और आलोचनात्मक निर्णय तथा सुसंगत व्यवहार लोकतंत्र के लिए अनिवार्य पूर्वधारणाएं हैं (लिपमॉन- 1988, पृ. 10)।

2. राजनीति की खिदमत में बच्चों के लिए दर्शन

इस तरह देखा जा सकता है कि बच्चों के लिए दर्शन इस मान्यता पर आधारित है कि आलोचनात्मक चिंतन और संवाद बच्चे के ऐसे लोकतांत्रिक स्वतंत्र नागरिक में रूपांतरण के लिए अनिवार्य शर्त है जो स्वत: चिंतन कर सकता हो। यहीं मुझे लगता है कि बच्चों के लिए दर्शन में आलोचनात्मक चिंतन और संवाद का क्या आशय है, इस पर सवाल किया जाना चाहिए। सबसे पहले तो यह मानना होगा कि आलोचनात्मक चिंतन पर लंबे समय से जबरदस्त बहस होती रही है। हालांकि आलोचना ने मुख्यत: इसके तर्कपरक आधार और सामान्यीकरण की परिकल्पना पर ही हमले का रूप लिया है (बर्बल्स एंड बर्क में थायर-बेकन-1999, गेंड्रोन-2003)। मेरा इरादा यहां उन बहसों के विस्तार में जाने का नहीं है, क्योंकि अब आलोचना मुद्दा नहीं रही है। आखिर स्वयं गैरेथ बी. मैथ्यूज (1994), जो लिपमॉन के साथ बच्चों के लिए दर्शन के अगुवाओं में एक रहे हैं, ने भी मनोवैज्ञानिक विकास के चरणों के इस तरह से क्रियान्वयन का विरोध किया है जिसमें बच्चों से उनके निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने की दिशा में काम करने की अपेक्षा की जाती हो। मैथ्यूज के अनुसार इस तरह की निश्चित सत्ताएं बच्चों को अपनी जरूरतों और लक्ष्यों का निषेध कर देती हैं। इसी तरह हार्वे सीगल (1997) लिपमॉन के साथ इस बात पर सहमति जताते हैं कि आलोचनात्मक चिंतन के साधारणीकरण योग्य पहलू का कारण निर्धारण अवयव के साथ उतना संबंध नहीं है, जितना व्यवस्थागत अवयव के साथ है। यानि यह मामला एक साधारणीकृत सच तक पहुंचने का उतना नहीं है जितना अन्यों के प्रति सम्मान की भावना और समस्यात्मक बातों पर सवाल उठाने जैसी बातों को व्यवस्थित करने का है। शेरोन, बायलिन और सीगल यह भी कहते हैं कि आलोचनात्मक चिंतन को पूर्णत: अन्य

किस्म की चिंतन प्रणालियों से भिन्न भी नहीं समझना चाहिए, 'बल्कि इसे इस रूप में देखा जाना चाहिए कि नए विचार या उत्पाद की रचना के मूल्यांकनपरक, विश्लेषणात्मक और तार्किक पहलू भी है, और उनके मूल्यांकन का एक कल्पनाशील रचनात्मक पक्ष भी है (बायलिन एंड सीगल-2003, पृ. 192)।

मैं कहना चाहती हूं कि हालांकि बच्चों के लिए दर्शन के विचार के केन्द्र में संप्रेषण की क्षमता और व्यवस्था है, जिनके जरिए वह बहिष्कार की समस्या को मजबूत करता है। बच्चों के लिए दर्शन में कारण और संवाद का मुख्य लक्ष्य बच्चों और शिक्षक दोनों के लिए ही व्यापक संभावना की निर्माण करना है। कोई भी लोकतांत्रिक समाज जिसका इस तरह से अभिमुखीकरण हुआ हो, वह ऐसा समाज होने का दावा कर सकता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन शैली खुद तय कर सकता है। यहां लोकतंत्र का आशय एक सामान्य स्वाभाविक इच्छाशक्ति की उपज के रूप में लिया जा सकता है। हालांकि यह विचार काफी महान नजर आते हैं, फिर भी वे महज ऐसे तर्कपूर्ण सिद्धांत नहीं हैं, जिनके अंदर निर्माणवाद और प्रगतिशीलता के विमर्श को शामिल कर लिया गया हो। जब इसे इस तरह देखा जाता है तब इस लक्ष्य के वास्तविक आदेश को स्वतंत्र कर्म की बजाय विचार के रूप में लिया जाता है। यह चिंतन और कर्म की रणनीतियों के विस्तार की सीमा में और यह असल में उन रणनीतियों की सीमा में भी नहीं आता, जिनमें इस तरह की क्षमता को समझा जा सके।

वास्तव में हम कह सकते हैं कि इस तरह की बोली विज्ञान और चिंतन की रणनीतियां स्वीकार के साथ ही साथ बहिष्कार के विमर्श को भी जन्म देती हैं। इन सुधारवादी रणनीतियों पर दबाव का असर यह होता है कि वे उन तमाम दूसरी आवाजों का बहिष्कार करने लगती हैं, जिनका वास्तव में सहभागिता और स्वायत्तता से कुछ भी लेना-देना नहीं होता (पोपकेविट्ज-1998)। इसके साथ ही मात्र चिंतन और संप्रेषण की दक्षता की महज एक कमजोरी को एक समस्या के रूप में देखा जाने लगेगा। नए विचारों, संवाद और जिम्मेदारी के प्रति खुले वातावरण में आलोचनात्मक चिंतन और स्वायत्तता को लोकतंत्र के लिए अनिवार्य शर्त के रूप में देखा जाने लगता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो तर्क, संवाद और आलोचनात्मक चिंतन केवल लोकतंत्र और स्वतंत्रता को व्यवस्थित करने वाले सिद्धांत हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं, जैसा कि ऊपर बताया गया है, लोकतंत्र एक तर्कसंगत बनावट है और उसी बनावट के चलते यह संभव होता है कि हम अपने जीवन में जो कुछ करते हैं उसकी सार्थकता तलाश पाते हैं और उसे उचित ठहरा पाते हैं। इस लिहाज से बच्चों के लिए दर्शन को स्वतंत्रता के अनुभव के रूप में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि प्रत्येक कार्य और प्रत्येक चिंतन प्रक्रिया, स्वायत्त और स्वयं-चिंतनशील नागरिकों के निर्माण के नाम पर भविष्य के लक्ष्यों से निर्धारित होती है (आरेंट-1977)।

बच्चों के लिए दर्शन को एक ऐसे मॉडल के रूप में पढ़ा जाना चाहिए जो स्वयं को संचालित करने की रणनीतियां और चिंतन की दक्षता प्रदान करता है। दर्शन व्यक्ति को खुद पर और दूसरों पर सवाल उठाने के लिए अनेक उपकरण प्रदान करा कर स्वायत्त चिंतन की संभावना उपलब्ध कराता है। कोई व्यक्ति जो स्वयं चिंतन करने में सक्षम है वह अपनी गहनतम भावनाओं, मूल्यों और पहचान को भी प्रश्नित कर सकता है।

मैं यह कहना चाहती हूं कि बच्चों के लिए दर्शन में संघर्ष वहां निहित है जहां से विषय का निर्धारण होता है। बच्चों के लिए दर्शन और परंपरागत शिक्षा में अंतर यह है कि ज्ञान के साथ जो संबंध धारणा, बोध और समझ से निर्धारित होता है उसका स्थान निज की निर्मिति ले लेती है। इसके बल पर यह कहा जा सकता है कि बच्चों के लिए दर्शन ने एक लिहाज से जहां ज्ञान के सामाजिक और ऐतिहासिक तटबंधों को पहचानने में बच्चों को शामिल किया है, वहीं दूसरे लिहाज से उन्हें उससे बहिष्कृत भी किया है।

स्पष्ट कहा जाए तो यहां मकसद अनिवार्यत: बच्चों के लिए दर्शन को नकारना या लोकतंत्र के लिए शिक्षा को लेकर हुए काम के महत्त्व को कम करना नहीं है। मेरी चिंता यह है कि वर्तमान में बच्चों के लिए दर्शन की जिस तरह से व्याख्या की जा रही है उसमें हर नई बात को महान मानकर अपना लेने के प्रलोभनों का प्रतिरोध उसमें नजर नहीं आता। सच कहा जाए तो बच्चों के लिए दर्शन में आलोचनात्मक चिंतन और स्वायत्तता को जिस तरह का महत्त्व दिया गया है, उस लिहाज से यह मौजूदा विमर्श के पुनरुत्पादन से अधिक कुछ नजर नहीं आता। बच्चों के लिए दर्शन में आलोचनात्मक चिंतन और संवाद के द्वारा बच्चा जिस किस्म की स्वायत्तता अर्जित करता है, वह मौजूदा विमर्श के पूर्व-निर्धारित स्थान को हासिल करने की स्वतंत्रता से अधिक कुछ नहीं है। आरेंट के अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ चुनना नहीं है, बल्कि वह तो किसी ऐसी संभावना की तलाश है, जिसका पहले से वस्तु, छवि या ज्ञान किसी भी रूप में कोई अस्तित्व ही न हो। यह असंभव की संभावना

है, अन्यों को नकारने की संभावना और इस तरह अपने चिंतन और कर्म की सामाजिक तथा ऐतिहासिक श्रृंखला को पहचानना।

बच्चों के लिए दर्शन को दिए गए मशीनी महत्त्व के जवाब में मैं अगले भाग में आरेंट की जन्म (नेटेलिटी) की अवधारणा की चर्चा करूंगी। आरेंट के अनुसार स्वतंत्रता जन्म (नेटेलिटी) में निहित है और किसी भी नए व्यक्ति या वस्तु के सामने आने पर उसके प्रति प्रतिक्रिया करने की जिम्मेदारी के अहसास को वे चिंतन (थिंकिंग) कहती हैं। आरेंट जिस तरह इस शब्द का प्रयोग करती हैं, वहां ऐसा लगता है कि उनके दिमाग में कोई अन्य ही प्रकार का चिंतन (थिंकिंग) मौजूद है, जिसे परंपरागत तरीकों से अर्जित नहीं किया जा सकता, यह चिंतनपरक समस्या समाधान की क्षमता, दक्षता या रणनीति नहीं है, बल्कि यह तो अर्थ की खोज है। मैं इसे विस्तार से समझाने की कोशिश करती हूं।

3. चिंतन बनाम संज्ञान

अब जो सवाल उठता है वह यह है कि यदि बच्चों के लिए दर्शन लोकतंत्र के लिए शिक्षा के रूप में राजनीतिक संरचना की खिदमत नहीं कर रहा होता, तो इसकी संभावित भूमिका क्या हो सकती थी ? इस सवाल पर आगे बढ़ने से पहले आरेंट के जन्म और चिन्तन (नेटलिटी एण्ड थिंकिंग) की अवधारणा को समझ लेना उचित होगा।

आरेंट कहती हैं कि चिंतन को अक्सर एक खास किस्म के ज्ञान, जो हमेशा किसी अंत तक पहुंचाता है और अंतिम परिणाम की घोषणा करता है, का संदर्भ बार-बार आने के कारण गलत ढंग से समझ लिया जाता है ; इसलिए विचार, हालांकि अपनी क्षमताओं और उपकरणों के द्वारा अपने परिवेश को नियंत्रित करने में सक्षम मनुष्य, (होमो फैबर) की उच्चतम दुनियावी उत्पादकता को प्रेरित करता है, फिर भी यह हरगिज उसका विशेषाधिकार नहीं है, जहां मनुष्य खुद अपने से आगे पहुंचने लगता है और गैर-जरूरी चीजों का उत्पादन करने लगता है, ऐसी वस्तुओं का जो उसकी भौतिक या बौद्धिक जरूरतों से नितांत असंबद्ध हैं, विचार वहीं पर उसकी ज्ञान की प्यास के समान ही प्राकृतिक जरूरतों की ओर भी खुद को उसके प्रेरणास्रोत के रूप में रखना शुरू करता है। दूसरी और संज्ञान ..... जैसा कि इसकी संरचना में ही निहित है, एक ऐसी प्रक्रिया का नाम है जिसका आरंभ और अंत होता है, जिसकी उपयोगिता को जांचा जा सकता है और यदि वह कोई परिणाम न दें तो नाकाम है (आरेंट-1955, पृ. 171)।

आरेंट के लिए मुद्दा यह नहीं है कि इस लिहाज से संज्ञान का मानव जीवन में महत्त्व नहीं है, बल्कि उनका कहना यह है कि हम ज्ञान अर्जित कर लें उतने मात्र से चिंतन शुरू नहीं हो जाता । यदि चिंतन को संज्ञान के रूप में समझा जाए तो उसका भी चिंतन से कोई लेना-देना नहीं है क्योंकि यह जो पहले से मौजूद है, उसके अलावा और कुछ भी उत्पन्न नहीं करता। आरेंट के अनुसार चिंतन के बारे में इस तरह सोचने की प्रवृत्ति के मूल मे चिंतन के बारे में वह आधुनिक समझ काम करती है जो इसे निश्चित और पारदर्शी ज्ञानार्जन का अनुकरणीय रास्ता मानती है। आधुनिकता को परिभाषित करने वाली निश्चितता की यह खोज खासतौर से भविष्य और आदर्श दुनिया के निर्माण पर केन्द्रित थी। जितनी ज्यादा रचनात्मकता और खोज होगी इस आदर्श को पाने के लिए उतना ही ज्यादा ज्ञान और संभावना बनेगी। जब इस तरह के यूटोपियाई उद्देश्यों को पाने के लिए चिंतन का इस्तेमाल होता है तब एक चिंतनपरक उपकरण के रूप में यह अपनी उपयोगिता खोने लगता है। नतीजा यह होता है कि संज्ञान के रूप में समझा गया चिंतन अपना अर्थ खो देता है और एक बार फिर मनुष्य को उसके मस्तिष्क की कारागाह में कैद कर देता है, जहां वह खुद अपने ही द्वारा रचे गए नमूनों की सीमाओं से घिरा रहता है (आरेंट-1958, पृ. 288)। आरेंट के अनुसार हमें दुनिया के बारे में खुद अपने द्वारा निर्मित दायरों के पार सोचने और अपनी बौद्धिक क्षमताओं के साथ उन्हें भविष्य के लक्ष्यों को पाने के उपकरणों के रूप में काम में लेने से कुछ ज्यादा करने की जरूरत है। उस स्थिति में तो यह और भी ज्यादा जरूरी है जब यह लक्ष्य ही प्रगति का एकमात्र परम पावन विचार मान लिया गया हो।

आरेंट चिंतन को दूसरी तरह से समझती हैं। चिंतन का न कोई अंत है और न स्वयं इसके बाहर इसका कोई लक्ष्य है तथा इसका किसी आदर्श को पाने से भी कोई लेना नहीं है। इसका चीजों को ठीक-ठाक करने से भी कोई वास्ता नहीं है। इसकी बजाय चिंतन का वास्ता 'खुद से कही गई बातों के स्मरण से है, (मैशिलीन-2001, पृष्ठ 18)। यह चिंतन स्वयं-नियमन या चिंतनपरक समस्या समाधान की क्षमता भी नहीं है, यह न तो कोई दक्षता है और न ही इसे परंपरागत तरीकों से सीखा या ग्रहण किया जा सकता है। चिंतन की चारित्रिक विशिष्टता यह है कि यह एक सच्चे अनुभव में से आकार लेता है और यह समस्त क्रिया-कलापों और गतिविधियों को प्रभावित करता है। यहां अनुभव का अर्थ हमारी संभावनाओं और क्षमताओं को बल प्रदान करने, हमारी स्वायत्तता, स्वाधीनता और आत्मनिर्भरता को बढ़ाने वाली किसी चीज से नहीं बल्कि ऐसी चीज से है जो हमें शर्मिंदा करे, संदेह में डाल दे, भ्रमित कर दे और घबराहट पैदा कर दे। सुकरात ने भी चिंतन का समझाने के लिए हवा के रूपक का इस्तेमाल किया था -

'हवाएं खुद अदृश्य रह कर भी खुद को हम पर प्रकट करती

हैं और ऐसा होता है कि हम उनकी पहुंच को महसूस कर पाते हैं (जेनोफोन)..... यही रूपक हमें सोफोक्लीज के यहां भी मिलता है, जो 'तेज हवा की तरह विचारों' को अविश्वसनीय 'विस्मयकारी प्रेरणा देने वाली चीज' मानते हैं, जो मनुष्य के लिए वरदान या अभिशाप है..... समस्या यह है कि यही हवा जब-जब उठती है, तब इमें अपनी ही पूर्व-मान्यताओं तथा घोषणाओं को उड़ा ले जाने की विलक्षणता समाई रहती है ..... इस अदृश्य तत्व की अपने किए को उलट देने की इसी प्रकृति में यह निहित है कि चिंतन के माध्यम के रूप में भाषा ने चीजों, शब्दों, अवधारणाओं, वाक्यों, परिभाषाओं, मतवादों को विचार के रूप में तय कर दिया है.... इसका असर यह होता है कि चिंतन सभी स्थापित कसौटियों, मूल्यों, अच्छे और बुरे को मापने के पैमानों, संक्षेप में उन परंपराओं और व्यवहार के नियमों, जिन्हें हम नैतिक मानते हैं, का अनिवार्यत: विध्वंस करने और उनकी जडें खोदने वाला प्रभाव रखता है। सुकरात यही कहते हैं कि यह तयशुदा विचार इतनी कुशलता के साथ आपकी पकड़ में आ जाते हैं कि आप यहां तक कि नींदों में भी उनका सही इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन यदि चिंतन की हवा जिससे अब मैं आपको झकझोरना चाहूंगी, मान लीजिए कि इस हवा ने आपको नींद से जगा दिया है और अब आप पूर्णत: जाग्रत और जीवंत हैं, तब आप देखते हैं कि आपकी पकड़ में और कुछ नहीं बस घबराहट है, जिसके साथ हम बेहतरीन अगर कुछ कर सकते हैं तो यही कि उसे एक-दूसरे के साथ बांटें (आरेंट-1978, पृ. 174-75)।

हवा के रूपक का संबंध कुछ हद तक जो हमारे साथ घटित होता है उससे है, कुछ ऐसा जिसकी हम अपेक्षा नहीं कर सकते और जो हमें संदेह की स्थिति में डाल देता है। आरेंट इस 'सच्चे अनुभव' और दुनिया में प्रवेश करने की इसकी क्षमता से संबंध बताने के लिए 'जन्म' (नेटेलिटी) शब्द का प्रयोग करती हैं। जैसा कि वॉल्टर कोहान कहते हैं 'नया जीवन, बिना आवाज के बच्चा, शिशु खुद अपने जन्म से बात करता है, उसके जन्म के साथ एक संदेह उठता है, हमें सवालों के बीच लाता है, दी गई व्यवस्था, चीजों की निश्चित अवस्थिति, को भंग करता है।' (कोहान-2002, पृ. 8)। जॉन मशिलीन के अनुसार एक नई शुरूआत को आरंभ करने की क्षमता रखना स्वतंत्रता का सच्चा अनुभव है। 'स्वतंत्रता कोई 'प्राकृतिक' क्षमता या सामर्थ्य नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी चीज है जो मुझे ऐसे किसी अन्य ने दी है जो मेरी जरूरतों और उद्देश्यों पर प्रश्न करता है।' (मशिलीन-2001, पृ.9)। ज्यां फ्रांस्वा ल्योटार्ड (1991) इस 'अमानवीय' की एक जरूरत, एक अनिश्चित विश्राम, के संबंध में कहते हैं कि यह कुछ भिन्न मौजूदा चीजों से कुछ नई एक उम्मीद की कल्पना करने का अवसर उपलब्ध कराती है। यह उम्मीद, यह संभावना जो दुनिया में कुछ नया लेकर आ सकती है, को इस तथ्य के साथ संबद्ध करने की जरूरत है कि यह दुनिया सिर्फ हमारे पहले से मौजूद भर नहीं है, बल्कि यह बहुत ही प्रभावी ढंग से हमें खास व्यक्तियों के रूप में गढ़ती भी है। यानि कि बेशक हम इस दुनिया में नए व्यक्ति के रूप में प्रवेश करते हैं, लेकिन हम हमेशा देर से पहुंचने वाले होते हैं। यदि फिर भी हमें, अपने इस विलंब से आने का अहसास नहीं होता है तो हम दुनिया के प्रति हमारी जिम्मेदारी और जिसके लिए कि हम हैं, से ही अलग-थलग कर दिए जाऐंगे। आरेंट की तर्ज पर नताशा लेविंसन (2001) कहती हैं विलंब से पहुंचने के इस अहसास को आधुनिकता ने तटस्थ कर दिया है। इसका यह मतलब नहीं कि विलंब से आने का अहसास होना ही असंभव हो गया हो, बल्कि हमारे प्रगति केंद्रित समाज द्वारा इसे अवशोषित और शांत कर दिया गया है। आखिरकार आधुनिकता के चरित्र को प्रगति के लिए व्यापक सांस्कृतिक आकांक्षाओं और अतीत को पीछे छोड़ कर ही चित्रित किया जा सकता है। इस धारणा के प्रतिरोध में आरेंट इस आकांक्षा की नैतिक अवांछनीयता और नितांत असंभाव्यता पर जोर देती हैं (लेविंसन, 2001)। इस विलंब के बारे में आरेंट के नजरिए पर रोशनी डालने के लिए लेविंसन विलियम फॉकनर का उद्धरण देते हैं, जिनके अनुसार 'अतीत कभी मरता नहीं, यहां तक कि वह कभी बीतता भी नहीं है' (लेंविंसन-2001 में फॉकनर, पृ. 14)। दूसरे शब्दों में, हम जिस दुनिया में प्रवेश करते हैं उसके प्रति हम जवाबदेह हैं, भले ही उस दुनिया को हमने बनाया नहीं है। विलंब का यह अनुभव हमें भ्रमित करेगा और हमारी जरूरतों और उद्देश्यों को सवालों से घेर देगा, इसलिए नहीं कि हम अपने उद्देश्यों को बेहतर बनाएं और जरूरतों के बारे में स्पष्ट हों या किसी चीज को हम बेहतर ढंग से समझ पाएं, बल्कि हमें यह पूछने में मदद करने के लिए किसी चीज के इस वक्त यहां होने का क्या मतलब है, खास इस क्षण में और इस स्थान पर होने का। इसी के बल पर आरेंट जन्म (नेटेलिटी) को एक किस्म के चमत्कार या हवा के रूप में परिभाषित करती हैं जो ज्ञान नहीं बल्कि चिंतन की क्षमता उत्पन्न करता है। इस लिहाज से चिंतन कोई बुद्धि का खेल नहीं बल्कि एक ऐसी चीज है जो हर व्यक्ति में मौजूद है और इस तरह यह एक बार फिर एक निर्मिति के रूप में संज्ञान और ज्ञान के विरोध में खड़ा होता है। चिंतन कुछ लोगों का विशेषाधिकार नहीं बल्कि यह हर व्यक्ति के लिए हमेशा उपलब्ध रहने वाली संभावना है।

4. चिंतन के लिए शिक्षा जन्म (नेटेलिटी) का संरक्षण करे

इस लिहाज से क्या किसी के भी लिए चिंतन करना सिखाना

संभव है ? यदि ऐसा संभव है तो हम नहीं जानते। यदि चिंतन किसी किस्म के टकराव से पैदा होता है तो चिंतन की शिक्षा ऐसे टकराव को शांत कर सकती है। लेकिन इस किस्म के किसी टकराव का न पूर्वानुमान किया जा सकता है और न ही उसकी उत्पत्ति की जा सकती है। चिंतन ऐसे टकराव की प्रतिक्रिया में होता है जिसका पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। लेकिन यदि चिंतन के अनुभव का पूर्वानुमान या हस्तांतरण नहीं किया जा सकता तो फिर किसी फार्मूले, नुस्खे या मॉडल के बिना चिंतन की शिक्षा देना कैसे संभव है ?

चिंतन कोई बुद्धि का खेल नहीं बल्कि एक ऐसी चीज है जो हर व्यक्ति में मौजूद है और इस तरह यह एक बार फिर एक निर्मिति के रूप में संज्ञान और ज्ञान के विरोध में खड़ा होता है। चिंतन कुछ लोगों का विशेषाधिकार नहीं बल्कि यह हर व्यक्ति के लिए हमेशा उपलब्ध रहने वाली संभावना है।

आरेंट के अनुसार, शिक्षा को नयेपन को बचाना होगा (आरेंट-1997)। हमारी उम्मीद हमेशा जन्म (नेटेलिटी) पर टिकी रहती है और हमें ध्यान रखना होगा कि वह नष्ट न हो। जैसा कि वे लिखती हैं-

'हमारी उम्मीद हमेशा उस नये पर टिकी रहती है जो हर नई पीढ़ी अपने साथ लाती है, लेकिन खासतौर से क्योंकि हम अपनी उम्मीदों को सिर्फ इसी पर टिका सकते हैं इसिलए हम जो पुराने हैं वे इस नए को नियंत्रित करने और वह कैसा दिखाई देगा इसे तय करने की कोशिश में सब कुछ नष्ट कर देते हैं। प्रत्येक बच्चे में क्या नया और क्रांतिकारी है, ठीक उसे बचाने के लिए शिक्षा को रूढ़ीवादी होना चाहिए।' (आरेंट-1977, पृ. 192-193)।

हालांकि आरेंट (1977) 'रूढीवादी रवैये' की बात करती हैं, लेकिन उसे पुरानी जीवन शैली की ओर लौटने के लिए अतीत की ओर मुड जाने के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। इसकी बजाय इसमें बच्चे को दुनिया से और दुनिया को बच्चे से बचाने का प्रयास निहित है। नयेपन को बचाने के लिए शिक्षा इस तरह से दी जानी चाहिए कि विद्यार्थी में दुनिया के संदर्भ में अपने प्रति ऐसी समझ विकसित हो सके जिसमें उनकी या दुनिया की अवस्थिति निश्चित या अपरिवर्तनीय न हो (ऑरेट-1977, पृ. 193)। लेंविसन इसे समझाते हुए कहते हैं कि आरेंट जिस रूढ़ीवादी शिक्षा की बात करती हैं उसका आशय इस दृढ़ विश्वास से जुड़ा हुआ है कि बच्चे दुनिया में आने के बाद जिस विलंब का अनुभव करेंगे उसे चुनौती दी जायेगी और पुन: रूपायित किया जायेगा। जबकि यदि शिक्षा की दिशा दुनिया को कैसा बनाना है इस ओर होगी तो इससे ऐसा प्रतीत होता है कि दुनिया को बदलने की जरूरत नहीं है क्योंकि यह तो पहले ही रूंपातरण की प्रक्रिया से गुजर रही है, 'प्रगति' और 'विकास' कई बार इसी बात की पुष्टि करते हुए नजर आते हैं। आरेंट जब दुनिया जैसी है उस पर जोर देती हैं तब वे दुनिया के बारे में बच्चों पर किसी एकांगी नजरिये को थोपना चाहती हों, ऐसा नहीं है। इसके विपरीत उनका मकसद उन्हें अन्य नजरियों से परिचित कराना होता है। जैसा कि लेविंसन कहते हैं कि दुनिया जैसी है उसी रूप में उससे परिचय कराने की पीछे मकसद दुनिया के बारे में रूढ़ धारणा बनाना नहीं, बल्कि नए विचारों की खोज करना है। नवागंतुकों का लगतार जन्म होता रहता है और वे लगातार एक-दूसरे और दुनिया के साथ परिचय की प्रकिया से गुजरते रहते हैं। इसी के परिणामस्वरूप जन्म (नेटेलिटी) विभिन्न समय सीमाओं और परिस्थितियों के पार टकराव में सहायक होता है, जिनमें यह नवागंतुक दुनिया में प्रवेश करते हैं (लेविंसन-2001, पृ. 28)।

इसलिए शिक्षा के लिए बच्चों में अपनी सामाजिक अवस्थिति जिसके जरिए वे दुनिया और एक-दूसरे से संबद्ध हैं, के बारे में जागरूकता पैदा करना महत्त्वपूर्ण है। अंतत: नए संबंध बनाने और नए यथार्थ की खोज की संभावना इस अनिवार्यत: संबंधपूर्ण स्थिति के यथार्थ की चेतना और पहचान के साथ ही शुरू होती है। हमारे लिए इस चेतना और पहचान के लिए हमें अन्य की जरूरत होती है जो हमारी जरूरतों और विचारों पर सवाल कर सके। इस तरह शिक्षा के सामने चुनौती ऐसे स्पेस बनाने की है जहां बच्चों का अन्यों से आमना-सामना हो सके और वे इस खोज की शुरूआत कर सकें कि इस तरह की भिडंत का क्या महत्त्व है? एक ऐसी स्पेस जहां मेरे साथ क्या होता है, ऐसा क्यों होता है और मुझे ऐसे में क्या करना चाहिए ? जैसे सवालों की सामूहिक खोज शुरू हो सके। इन सवालों का जवाब खुद को बेहतर ढंग से जानने या स्वयं की पहचान बनाने में नहीं बल्कि अपने जीवन को इस तरह देखने, जैसे मैंने इसे पहले देखा ही न हो और उसे बदलने में निहित है। यह किसी ऐसी चीज के जवाब की खोज है जिसने मुझे बहुत भ्रमित किया है और जहां मैं दूसरों के साथ मिल कर चीजों के प्रति प्रतिक्रिया कर सकूं। और क्योंकि हम यह नहीं जानते कि हमारे साथ क्या हुआ, हमें दूसरों की जरूरत होती है क्योंकि केवल बोल कर या अपने कर्म के द्वारा ही हम स्वयं को अन्य के सामने अभिव्यक्त कर सकते हैं । कांट (Kant) का वक्तव्य इस संदर्भ में उपयुक्त होगा, जहां वे कहते हैं, हम किस हद तक और कितना सही चिंतन

कर पा रहे होते यदि हमें यह नहीं मालूम होता कि हम अन्यों के साथ एक समुदाय में रहते हैं, जिन पर हम अपने विचारों को उन पर और वे अपने विचारों को हमारे सामने व्यक्त कर सकते हैं।' (कांट-1996, पृ. 16)। अन्यों के साथ संबंध को एक दायित्व की तरह भी देखा जाना चाहिए, जहां दूसरों की जरूरत के समय आप उन्हें उपलब्ध हो सकें। यह अन्यों के प्रति उपलब्धता ही है जो मूल्यों को एक पैमाना देती है और जो अंत की अंतहीन श्रृंखला और मनुष्य (होमो फेबर) के उपयोगितावाद से उपजे साधनों का अतिक्रमण करती है।

5. चिंतन के लिए शिक्षा और खोजी समुदाय

कक्षा को खोजी समुदाय में तब्दील करके बच्चों के लिए दर्शन ऐसा वातावरण बनाना चाहता है जहां संवाद को प्रोत्साहित किया जा सके। हालांकि खोजी समुदाय की पहुंच स्थिर, विवेकपूर्ण और मशीनी होती है और यहां मेरा यह सवाल है कि यह संवाद को बल प्रदान करने में किस हद तक सफल होता है। इस खंड में मैं इस बात का विश्लेषण करूंगी कि बच्चों के लिए दर्शन में संवाद को जिस तरह समझा गया है वह अन्यों की जरूरत के प्रति संवेदनशील है भी या नहीं।

बच्चों के लिए दर्शन में संवाद की जिस तरह समझाया गया है उसमें वह ऊंची आवाज में चिंतन का एक ऐसा प्रकार है जो समस्या-केंद्रित, स्वयं-सुधारक, समतावादी और पारस्परिक हितों पर आधारित है; दूसरे शब्दों में यह खोज आधारित चिंतन है (स्पिलटर एंड शार्प-1995)। इसके अलावा स्पिलटर और शार्प यह स्पष्ट करते हैं कि संवाद की प्रत्येक स्थिति विभिन्न परिप्रेक्ष्य और नजरियों के अंतर्संबंध के विचार को स्वीकार करती है। वाकोपवाक के संदर्भ में बच्चे यह खोज करते हैं कि एक समस्या के बारे में सोचने के कई तरीके हो सकते हैं और समस्या क्या है इसे परिभाषित करना भी अपने आप में समस्या का एक हिस्सा हो सकता है। (स्पिलटर एंड शार्प-1995, पृ. 12)। वे यह भी कहते हैं कि जब लोग संवाद कर रहे होते हैं तब उनके लिए चिंतन करना, एकाग्र होना, विकल्पों पर विचार करना, ध्यान से सुनना, परिभाषाओं और अर्थों पर पूरा ध्यान देना और पूर्व में अनसोचे रह गए मतों को पहचानना अनिवार्यता बन जाता है। एक खोजी समुदाय के निर्माण के लिए वांछित अनेक दक्षताओं में सवाल बनाने, पूछने और उनके प्रति जवाब देने का खास महत्त्व है। सच तो यह है कि कक्षा का एक संवादपूर्ण खोजी समुदाय के रूप में पुनर्निर्माण बहुत हद तक शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा पूछे जाने वाले सवालों की प्रकृति और गुणवत्ता पर निर्भर करता है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि बच्चों के लिए दर्शन खोजपूर्ण सवालों पर जोर देता है। यह ऐसे सवाल होते हैं जिनमें प्रश्नकर्ता उन बातों को जानना चाहता है जिनके बारे में वह नहीं जानता और उनकी निर्मिति इस तरह की होती है जो उस बारे में और अधिक अन्वेषण को बढ़ावा देती है। इनका चाहे जो भी जवाब मिले, यह सवाल आगे और अन्वेषण और प्रतिक्रियाओं का रास्ता खोलते हैं। इस तरह के सवाल महज सूचनाएं जुटाने के लिए नहीं होते बल्कि उनमें खुद सवालों के प्रति भी एक सरोकार प्रदर्शित होता है। इन सवालों के 'सुकरात के सवालों' के रूप में भी जाना जाता है, जिसमें यह निहित है कि यह इस प्रकार के सवाल हैं जो हमारे चिंतन के स्वरूप और उसमें अंतर्निहित तर्क की खोज करते हैं और हमें उचित निर्णय तक पहुंचने में मदद करते हैं।' (स्पिलटर एंड शार्प-1995, पृ. 56)।

इस किस्म के सवाल जो बिना जांचे मतों के निहितार्थ को प्रकट करते हैं, के साथ समस्या यह है कि वे चिंतन की शिक्षा के एक खास मॉडल की ओर ले जाते हैं। सुकरात का कुमारभृत्य (मिडवाइफरी) स्वयं-प्रेरक बन जाता है और फलस्वरूप सच्चे अनुभव का प्रदर्शन कम हो जाता है। सुकरात ने अपने कुमारभृत्य को सच के साथ संबंध के रूप में देखा, जहां सही सवाल पूछने का मतलब था दुनिया के बारे में अंतर्दृष्टि हासिल करना। इसे विरूपित कर खोजी समुदाय अपने प्रक्रियागत विवेक के प्रक्रिया संबंधी आदर्श को आरोपित कर देता है। अर्थ और सच घुलमिल जाते हैं और जन्म के नयेपन का आगमन वर्जित हो जाता है।

और इस पर भी बच्चों के लिए दर्शन 'शुरूआत' और 'आश्चर्य' पर जिस तरह जोर देता है उसके साथ इसका विरोध नजर आता है, जो कभी-कभी संदेह, संशय, उलझन या कल्पना आदि के रूप में सामने आता है। मैथ्यूज आश्चर्य को जीवन का सुंदरतम उपहार मानते हैं (मैथ्यूज-1989, पृष्ठ 17), जबकि लिपमॉन रहस्य के बारे में बात करते हुए कहते हैं कि वे दुनिया को चमत्कार से पूर्ण बनाते हैं, रहस्य जो समय-समय पर हमारे सामने आते हैं और बच्चों के सामने लगातार घटित होते हैं और वे हमें संदेह की स्थिति में डाल देते हैं। प्लेटो आश्चर्य को एक किस्म की कारूणिकता के रूप में देखते हैं, (आरेंट- 1978) जिसमें बाहरी कारणों से हमारे साथ कुछ घटित होता है, लेकिन वे अदृश्य ताकतें हमें आश्चर्य में डालती हैं। वे आश्चर्य को चिंतन की शुरूआत मानते हैं। हालांकि 'आश्चर्य' (वनडरिंग) की अवधारणा का संबंध अन्य की उपस्थिति, जिसका कि मैंने आरेंट के संदर्भ में जिक्र किया था, से नजर आता है, लेकिन यह दोनों बातें एक नहीं हैं। प्लेटो सराहनीय आश्चर्य की बात करते हैं, जो सिर्फ सुंदर चीजों से जुड़ा होता है। बच्चों के लिए दर्शन भी जब आश्चर्य भावनात्मक अवयव की बात

करता है, तब उसके सामने भी यही होता है। इस तरह आश्चर्य भी ज्ञान के एक स्रोत के रूप में काम करता है। जैसा कि एक्केहार्ड मार्टन्स कहते हैं कि सिर्फ यह उलझन ही है जो सच्चे ज्ञान को संभव बनाता है (मार्टन्स-1999, पृ. 122)।

6. खाली जगह और खोजी समुदाय

यदि बच्चों के लिए दर्शन चिंतन और संवाद के विकास में कोई भूमिका निभाना चाहता है तो इसे प्रक्रिया और सिद्धांत के समायोजन पर इतना जोर नहीं देना चाहिए, बल्कि एक ऐसी जगह की खोज करनी चाहिए जहां अर्थ के सवाल उठाए जा सकें।

इस लक्ष्य को पाने में संवाद की द्वंद्वात्मक व्याख्या की बजाय माइकल बाख्तिन ने जिस संदर्भ में इसे समझाया है वह ज्यादा मददगार होगी। बाख्तिन के शब्दों में प्रश्नोत्तर सत्र का मुद्दा यह नहीं होना चाहिए कि वह किसी संश्लेषण या एकल निष्कर्ष पर पहुंचे, बल्कि यह संश्लिष्टता की असंभाव्यता की समझ बनाए। बाख्तिन के अनुसार संवाद एकालाप नहीं होता और न ही इसे वक्ता नियंत्रित कर सकता है; बल्कि वास्तव में यह श्रोता के प्रति भी न्याय करता है। श्रोता पर ध्यान देने का मतलब किसी विमर्श को किस रूप में ग्रहण किया जाए यह निर्धारित करने की कोशिश करना मात्र ही नहीं है। इसके विपरीत इसका मतलब तो इस तथ्य को स्वीकारना है कि यह संवाद में ही निहित है कि श्रोता जो कहा जा रहा है उसमें ध्वनित होती अन्य कहानियों को भी ग्रहण कर सके, क्योंकि वक्ता यह कभी नहीं जानता कि उसकी कहानियों को कैसे ग्रहण किया जा रहा है (रीडिंग्स-1997)। इसलिए संवाद कभी भी पूरी तरह वक्ता के द्वारा नियंत्रित नहीं होता और इसीलिए भाषा कभी भी न तो एकार्थक होती है और न ही पारदर्शी होती है। बाख्तिन के अनुसार भाषा स्व (वक्ता) और अन्य (श्रोता) के बीच की सीमा पर होती है (वर्च-1987)। भाषा का हर शब्द आधा किसी अन्य का होता है। कोई भी शब्द किसी का अपना सिर्फ तब होता है जब वक्ता के रूप में व्यक्ति शब्द को अनुकूलित करे और उसे खास अपने अभिव्यंजक इरादों में रूपांतरित करे। ऐसा नहीं है कि इस किस्म के अनुकूलन से पहले शब्द किसी तटस्थ और अवैयक्तिक भाषा में रहता रहा हो, बल्कि वह अन्य लोगों की जुबान पर अन्य लोगों के संदर्भों में अन्य लोगों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वहां मौजूद रहता है। वहां से उठाकर ही व्यक्ति उसे अपने संदर्भ में प्रयोग करता है और उसे अपना बनाता है। बाख्तिन लिखते हैं, 'कई शब्द अडियल ढंग से प्रतिरोध करते हैं, कई असंबद्ध बने रहते हैं, और जिसने उन्हें अनुकूलित किया है उसके मुंह से वे किसी विदेशी शब्द की तरह सुनाई देते हैं, उनका उस व्यक्ति के संदर्भ के साथ समावेश नहीं हो पाता और वे उससे बाहर ही रहते हैं।' (बाख्तिन-1994)। भाषा कोई तटस्थ माध्यम नहीं है जो वक्ता के इरादों की निजी संपत्ति में आजादी से और आसानी से घूमती-फिरती रहे, बल्कि इसके अंदर अन्य लोगों के अभिप्राय भी बसते हैं। इसलिए संवाद हमेशा मैं और अन्य के बीच की सीमा पर रहता है। यह जो 'बीच की' जगह है, इसे न तो वक्ता और न ही श्रोता नियंत्रित कर सकता है। यह इस अर्थ में खुली जगह या खाली जगह है, जहां पहले से भाषा के दिए अपने अर्थ भी मौजूद रहते हैं । यह एक इतनी खाली जगह है, जहां अर्थ का सवाल उठ सकता है, यह जिम्मेदारी की जगह है तो यह एक ऐसी जगह है जिसे हम विचार की जगह का नाम दे सकते हैं। संवाद में हमेशा शब्दों का आदान-प्रदान होता है। जब हम शब्द दे रहे होते हैं, तभी हम स्वयं शब्द ग्रहण भी कर रहे होते हैं। संवाद के दौरान ही हमारा खुद से भी सामना होता है। हालांकि हम खुद भी कोशिश करते हैं, लेकिन उसमें हम कभी सफल नहीं होते क्योंकि हमारी आंखों के देखने की सीमा है, इसलिए हमें अन्य की आंखें उधार लेनी पड़ती हैं, हमें अन्य की जरूरत होती है ताकि हम अपने विचारों की सीमा को जान सकें और उसका अतिक्रमण कर सकें।

संवाद कार्य का कोई प्रकार नहीं है, जिसमें से होकर अर्थ गुजरता हो, बल्कि यह तो कर्म है जहां अर्थ का सवाल उठता है। खोजी समुदाय के लिए इसका मतलब यह हुआ कि हमें संप्रेषण के सहकारितापूर्ण अभ्यास को पुन: स्थापित करने की जरूरत नहीं है बल्कि अन्य की उपस्थिति के अनुभव को सच बनाना है। बाख्तिन अपने वक्तव्य को समझाने के लिए मेले के रूपक का इस्तेमाल करते हैं। उत्सव मना रही जनता एक 'खुला समुदाय' थी, जिसमें सब लोग अपनी भागीदारी निभा रहे थे और कोई भी समूह इससे बाहर नहीं था, निम्न वर्ग के लोग जिन खेलों को खेल रहे थे वे ही खेल उच्च वर्ग के लोग भी खेल रहे थे। यह कोई प्रदर्शन या नाटक नहीं था, जहां कलाकर और दर्शक अलग-अलग होते हैं। सब हिस्सा ले रहे थे, बाहर की और अभिमुख थे। मेलों में आमतौर पर होने वाले मसखरेपन और अन्य किस्म की अस्थाई गतिविधियों के साथ ही साथ वहां ऐसी कौतुहलपूर्ण स्थितियों की भी निर्मिति हो रही थी जहां लोग स्वयं को एक-दूसरे के सामने प्रकट कर रहे थे (सीमोंस-1990)। मेले में स्थापित नियमों का पालन किया जा रहा था तो नए विकल्पों की भी तलाश की जा रही थी। इसमें कहीं भी यह निहित नहीं है कि हम यह उम्मीद करें कि नया विमर्श पूरी तरह अन्यों के द्वारा ही लाया जाएगा, बल्कि यदि मौजूदा विमर्श पर खुल कर बातचीत की जाये तो वहीं से जिंदगी के प्रति नया दृष्टिकोण जन्म ले सकता है। ऐसा अनुभव हमारे विलंब से आए होने पर सवाल उठाने का अवसर उपलब्ध कराता है और नए कि शुरूआत की संभावना को खोलता है इस तरह क्या लगातार वे जो

करते हैं केवल परस्पर एक-दूसरे को मुक्त करते रह कर क्या मनुष्य मुक्त एजेंट बना रह सकता है, क्या केवल लगातार खुद को बदलने और नई शुरूआत के लिए तत्पर रहने के लिए उस पर इतना भरोसा किया जा सकता है कि कुछ नया शुरू किया जा सके।' (आरेंट-1958, पृ. 240)

यह मेला जिन संभावनाओं की बात करता है उनकी रोशनी में खोजी समुदाय को भी अन्य संभाावनाओं के साथ आदान-प्रदान के लिए खुला छोड़ा जाना चाहिए। खोजी समुदाय का अर्थ यहां एक ऐसी जगह से लिया जाना चाहिए जहां बच्चे स्वयं को एक-दूसरे के सामने प्रस्तुत कर सकें। मेले की भावना की समानता के लिए मुझे इतना साहस चाहिए कि मैं अपने स्थापित स्थान को छोड़ कर उन असुविधाजनक स्थितियों में जा सकूं, जिनका स्वतंत्रता की कीमत हम अन्य पर निर्भरता और खुद पर भरोसे के रूप में चुकाते हैं। इस तरह स्व के रूपांतरण की संभावना और स्वयं को सवालों के बीच डालकर ही हमें लोकतंत्र को समझना होगा। यह बच्चों के लिए दर्शन के लिए एकदम विपरीत है, जहां संवाद एक आदर्श की सेवा या नए आदर्श की सेवा या नए आदर्श के सृजन की कसौटी पर आधारित होता है।

भाषा कोई तटस्थ माध्यम नहीं है जो वक्ता के इरादों की निजी संपत्ति में आजादी से और आसानी से घूमती-फिरती रहे, बल्कि इसके अंदर अन्य लोगों के अभिप्राय भी बसते हैं। इसलिए संवाद हमेशा मैं और अन्य के बीच की सीमा पर रहता है। यह जो 'बीच की' जगह है, इसे न तो वक्ता और न ही श्रोता नियंत्रित कर सकता है। यह इस अर्थ में खुली जगह या खाली जगह है, जहां पहले से भाषा के दिए अपने अर्थ भी मौजूद रहते हैं ।

7. उपसंहार : बच्चों के लिए दर्शन एक उपहार और एक अनुमोदन के रूप में

निस्संदेह बच्चों के लिए दर्शन का उभार शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण विकास है, लेकिन यहां मैंने यह दिखाने की कोशिश की है कि यह कैसे लोकतंत्र की खोज को रोक देता है, जबकि उस वक्त में जरूरत इस बात की होती है कि सवालों को खोला जाए। विडंबना यह है कि बच्चे के लिए संघर्ष ने उसके जन्म की संभावना को ही रोक दिया है। इस तरह लिपमॉन की लोकतंत्र के लिए सजगता ने, इसे वे जितने लोकतांत्रिक हैं उस हद तक सीमित कर दिया है। अंतत: जब तक खोजी समुदाय सच पर केंद्रित है और यह सच जहां भी है वहां सर्व सामान्य है तब तक उसमें भाग लेने वाले एक-दूसरे से असंबद्ध हैं और वे एक-दूसरे के साथ संवाद में नहीं हैं। वह समुदाय जिसकी मैं अनुशंसा करती हूं, वह समुदाय जिसकी हमें जरूरत है, वह एक ऐसा समुदाय है जिसमें लोग एक-दूसरे को जानते हैं। इसलिए खोज का विषय या संप्रेषण की दक्षता की प्रकृति मुद्दा नहीं है, जिस बात का महत्त्व है वह है, अन्य की उपस्थिति का अनुभव। इस अनुभव का निर्णय लेने या तर्क प्रस्तुत करने से कोई लेना-देना नहीं है, इसका महत्त्व तो अन्य को जानने में है।

इस पर भी बच्चों के लिए दर्शन के वर्तमान स्वरूप के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए इसकी सीधे-सीधे आलोचना करते हुए सतर्क रहने की जरूरत है क्योंकि इस शीर्षक में और भी व्यापक संभावनाएं छुपी हुई हैं, जिनकी ओर अन्यथा ध्यान ही नहीं जाता। क्या यह संभव नहीं है कि संवाद और आलोचनात्मक चिंतन ने भविष्य के आदर्श को पाने के लिए उन रास्तों को हमारी सृष्टि से ओझल कर दिया हो, जिसमें इसे काम में लेने के लिए अन्य की उपस्थिति की अनिवार्यता साबित होती हो - ऐसा हो सकता है कि वास्तविक बच्चों के लिए दर्शन का अभ्यास इसके अंदर कहीं छुपा हुआ हो। अंतत: क्या खोजी समुदाय में हमेशा अन्य के साथ चिंतन, अन्य के साथ विरोध का सामना करना, अन्य के साथ उत्तर की तलाश करना, अन्य के साथ संदेह करना अंतर्निहित नहीं होता ? क्या हमें हमेशा ही किसी भी स्थिति में अन्य का सामना या अन्य के साथ व्यवहार नहीं करना होता ? जब बच्चों के लिए दर्शन में अन्य के साथ होने की अवधारणा का हमेशा विश्लेषण की खोज करने या बहस में शामिल होने या स्वयं की स्वायत्तता हासिल करने से संबंध रहा है तब इसमें कहीं न कहीं दूसरे अनुभव भी छुपे हुए हैं जिन्हें हम भूल रहे हैं, जबकि वे कहीं ज्यादा मौलिक हैं। यह खुद को पहचानने का अनुभव उतना नहीं है जितना स्व से पीछे हटने का मसला है- यानि जिसे हम चिंतन कहते हैं उसका अनुभव। यह मानते हुए कि चिंतन की कोई विधि नहीं होती हम सिर्फ बच्चों के लिए दर्शन को एक उपहार, एक अपवाद, एक असाधारण चीज मान सकते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों के लिए दर्शन के पास अनुकूलन के लिए कोई लक्ष्य, कोई नियम, कोई पूर्व निर्धारित विचार नहीं होगा। बहस की व्याख्या बीच की एक जगह, एक ऐसी अनजान चीज के रूप में की जा सकती है, जो हमारे सामने तो आती है, लेकिन हम नहीं जानते कि उसके साथ कैसे पेश आएं। लापरवाही के उस एक क्षण में - जो अक्सर बच्चों के बीच उत्तेजना का कारण बनता है - चिंतन या स्व से पीछे हटने का अनुभव घटित हो सकता है। यह 'हवा' हमारे हाथ में एक नवजात बच्चा दे जाती है, जो हमारे अंदर इस सवाल को उठाता है कि क्या हम उस दर्शन को 'स्वीकार' भी करना चाहते हैं जो यह अपने साथ ला सकता है। ◆

अनुवाद - देवयानी